Shodh ManthanVol. XVII Special Issue Jan.2026 ISSN: (P)0976-5255(e)2454-339X, Impact Factor 8.889 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17SI01.10

मोहन राकेश के नाटक आधे–अधूरे में कौटुम्बिक यथार्थ

10

सुमित्रा पाठक
शोधार्थिनी (हिन्दी विभाग)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज मुरादाबाद (उ.प्र.)

प्रो. (डॉ.) सीमा अग्रवाल
विभागाध्यक्षा (हिन्दी विभाग)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज मुरादाबाद (उ.प्र.)

सारांश

हिन्दी नाट्य जगत के विख्यात नाटककार, नई कहानी आन्दोलन की तिकड़ी के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार, साहित्य जगत की सनसनी, सामाजिक सम्बन्धों के यथार्थ प्रेक्षक व विश्लेषक, मोहन राकेश जी ने अपनी अल्प जीवनावधि में मात्र साढ़े तीन नाटकों का सृजन कर नाट्य साहित्य के एक दक्ष नाटककार होने का गौरव प्राप्त किया। उनकी नाट्य यात्रा प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' (1958) से प्रारम्भ होकर 'पैर तले की जमीन' (1974) नामक चतुर्थ नाटक के आधे लेखन पर ही एक असमय, अनचाहा व दुर्भाग्यशाली विराम लेती है। राकेश जी की जीवन ज्योति मद्धिम पड़ने से लेकर पूर्णतः विलुप्त होने की गाथा तक उनका मनः उद्वेलन व अंतः संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता रहता है।

अल्पायु में काल कवलित होने के बाद भी सर्जक की सर्जनाएं उन्हें अकथनीय प्रसिद्धि व अनथक अमरत्व का वरदान दे जाती हैं। वे एक ऐसे सहृदय व मनमोहक अर्थवेत्ता थे, जो कम जीकर भी नाबाद जिए और न जीने पर भी जीवितों के हृदय में जीवित रहे।

मोहन राकेश जी का अंतिम पूर्ण नाटक 'आधे अधूरे' एक मध्यवर्गीय कुटुम्ब की घिनौनी सच्चाई को समक्ष रखने से लेकर दाम्पत्य सम्बन्धों में व्याप्त घोर कटुता का भी यथार्थ निरूपण करता है। समकालीन कलेवर में स्थापित नाटक समाज में वृहद् स्तर पर छाये भ्रम, टूटते मूल्य, दोहरी नैतिकता तथा विविध त्रासद स्थितियों का घटिया यथार्थ है।

नाटक के केन्द्र में एक ऐसी अति महत्वाकांक्षिणी नारी है, जो नाटककार के अनुसार ''उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष।'' जीवनाघातों से थकी, टूटी, पस्त व त्रस्त नारी जीवन रथ को चलाने हेतु अनेक अच्छे–बुरे माध्यमों का सहारा लेती है, कारण है कि वह फलसिद्धि की ओर ध्यान देती है जैसे अर्जुन द्वारा चिड़िया की आँख पर निशाना साधना, लेकिन साध्य की पवित्रता का भाव उसके अन्तर में दूर–दूर भी नहीं।

मुख्य शब्द

सहृदय, त्रासद, महत्वाकांक्षिणी, जीवनाघात् व फलसिद्धि।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य मंडल के सर्वश्रेष्ठ नक्षत्र मोहन राकेश जी की मंजी हुई लेखनी का चमत्कार 'आधे अधूरे' पूर्व वाले नाटकों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें इतिहास का बाह्या आडम्बर त्यागकर समकालीन जीवन के पहलुओं को रेखांकित किया गया है। नाटकीय भावभूमि नर–नारी सम्बन्धों के साथ दाम्पत्य सम्बन्धों में व्याप्त दोहरी नैतिकता का भी सपाट वर्णन करती है। सम्पूर्ण परिवार किसी गहरी अभिशप्त छाया से इस अर्थ में घिरा जान पड़ता है कि किसी को दूसरे से मतलब नहीं। सब झल्लाते, टूटते बिखरते व चिल्लाते दिखाई देते हैं, घर छोड़ना चाहते हैं लेकिन ऐसा करने में विफल हैं, क्योंकि जीवन दिशाविहीन है। सदस्यों में से किसी को भी घर जैसी अनुभूति होना तो दूर, वे इसे घर मानने तक से इन्कार करते हैं। बाबजूद इसके मुर्गीखाने में बन्द मुर्गियों जैसा जीवन संकट ढ़ोये जा रहे हैं, न जाने किस अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में ?

माता–पिता के मध्य प्रतिदिन की मारपीट, अनर्गल वार्तालाप, वीभत्स व्यवहार व भ्रमों का पुलन्दा बच्चों को अनचीन्ही राहों का सौदागर बना डालता है। घर के प्रवेशद्वार पर ही जैसे बर्बादी के निशान बने हुए हैं यथा – बच्ची का खुला बस्ता, फटी पुस्तक, कपड़े, मेजपोश, कुर्सी, मेज पर जमी धूल, सर्वत्र पसरी एक वीभत्स मायूसी, वातारण की भयावहता को अतिरंजित करती जान पड़ती है।

मानवीय सम्बन्ध : एक मूल्यांकन

मनुष्य में मनुष्यता का उद्भव सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था से ही है, जिसका तात्पर्य है कि समाज में विचरते हुए मानव को परिवार, समाज, राजनीति, अर्थ व धर्म समस्त क्षेत्रों में सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। व्यक्ति (नर या नारी) वातावरण में अपनी निवासावधि में जो सम्बन्ध निर्मित करता है, वे ही सच्चे अर्थो में मानवीय सम्बन्ध हैं।

'आधे अधूरे' नाटक : सम्बन्धों का यथार्थ' – यहाँ पर नाटककार की विशेष खूबी यह रही है कि उसने मानवीय आपदा चरित्रगत विशेषताओं, किसी गूढ़ स्थिति अथवा दुर्दम्य संकट को उकेरने में अपनी मानसिक शक्ति बर्बाद न कर मुख्य व्यक्ति की सच्चाइयों को हवा दी है। अधूरेपन व पूर्णता की तलाश का अंतः संघर्ष नाटककार की लेखनी को छूकर प्राण पा बैठा है, उसी प्रकार पात्रों के खीझ, क्रोध, आक्रोश व आक्रामकता को पर्याप्त स्थान दिया गया है।[1]

जीवन के अनगिनत थपेड़े सहती सावित्री को अंततः स्वीकार करना पड़ता है कि संसार में सम्पूर्णता नाम की वस्तु का जब अस्तित्व ही नहीं है, तो उसे ढूंढना भी व्यर्थ है। नायिका के मस्तिष्क में यह विचार आता है सब के सब : एक से : बिल्कुल एक से हैं आप लोग अलग अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा सबका एक ही।''[2] ओमशिवपुरी जी का विश्लेषण सटीक बैठता है,'' एक निर्देशक की दृष्टि से 'आधे अधूरे' मुझे समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक लगता है। यह मौजूदा जीवन की बिडम्बना के कुछ सघन बिन्दुओं को रेखांकित करता है। इसके पात्र, स्थितियाँ एवं मनः स्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय हैं। आधे अधूरे आज के जीवन के एक गहन अनुभव खंड को मूर्त करता है।''[3]

नाटकीय चरित्रों के टूटते, संभलते, जुड़ते या भटकते सम्बन्धों को हम अग्रांकित प्रकार से देखते हैं।

नर–नारी सम्बन्ध

विवेच्य नाटक में नाटककार ने सावित्री व महेन्द्रनाथ के माध्यम से समकालीन पति–पत्नी का एक सटीक चित्र रूपायित किया है। आर्थिक अभावों की वैशाखी पर आरूढ़ नाटक का तथाकथित नायक महेन्द्रनाथ एकदम नाकारा, निकम्मा व जीवन हेतु बोझस्वरूप होकर अपनी पत्नी की प्रतिदिन की डाँट–फटकार सुनने हेतु बाध्य है, जो प्रारम्भ में भले ही गलत लगती रही हो, लेकिन अन्ततः उसकी नियति बनकर उसका व्यक्तित्व ढ़क लेती है। सावित्री धनोपार्जन करने के कारण घर में साम्राज्ञी बन सब पर उल्टे–पुल्टे हुकुम चलाती रहती है विशेषकर अपने नामुराद मोहरानुमा पति पर जिसने अपने खालीपन से सकल परिवार को बर्बादी के मुहाने पर खड़ा कर दिया है। इसी आक्रोश ज्वर में उबलती सावित्री पति से कहती है कि जो घर में आता है, उसका स्वागत करना सीखो, क्योकि वह बड़ा आदमी है उसकी तनख्वाह पाँच हजार है, सम्पूर्ण दफ्तर संभालता है अन्यथा जो, ''दो रोटी आज मिल जाती हैं, मेरी नौकरी से वह भी न मिल पाती लड़की भी घर में रहकर ही बुढ़ा जाती।[4] वह हमेशा चाहती रही है कि घर के अन्य सदस्यों को भी कोई कार्य करके परिवार को आर्थिक सशक्तीकरण प्रदान करना चाहिए, लेकिन सब उसकी बातों को ऐसे अनसुना कर देते हैं, मानो वह एक चक्की हो, जो आटा पीस–पीसकर सबका पेट भरती रहेगी। पारिवारिक गाड़ी को पटरी पर चलाने हेतु सावित्री घोर विवशता में नौकरी करती है। विवाह समय महेन्द्रनाथ अपनी ब्याहता पत्नी को निश्चित रूप से चाहता रहा होगा तथा पत्नी भी अच्छा प्रत्युत्तर देती रही होगी। आर्थिक विपन्नावस्था ने मौजूदा हालात को इतना विकृत कर दिया है, कि पति अपनी पत्नी की शौकीन प्रवृत्तियों को तो क्या, साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति में भी असफल रहा है। सावित्री दोषारोपण करते हुए कहती है कि जब स्थिति सही थी, तब प्रतिदिन पार्टियाँ होती थीं, दावतें उड़ायी जाती थीं जिसमें शराब सेवन आम बात थी, जबकि इसके ठीक उलट महेन्द्रनाथ घर की गिरी आर्थिक स्थिति का कारण केवल सावित्री की अन्धाधुन्ध इच्छाओं को मानता है। यही तो वह कहता है, ''पता है, कितना खर्च था, उन दिनों इस घर का? चार सौ रूपये महीने का मकान था। टैक्सियों में आना–जाना होता था। किस्तों पर फ्रिज खरीदा गया था।[5]

सावित्री पति से आन्तरिक सन्तुष्टि चाहती थी, बाह्य नहीं, लेकिन वह पत्नी की मांगपूर्ति में हमेशा ही असफल रहा तभी तो क्रोध की चरमावस्था में वह पति को पति मानने से इन्कार कर देती है। महेन्द्रनाथ के आत्मीय मित्र जुनेजा के समक्ष उसका व्यंग्यवाण ऐसे निकलता है, ''मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी''[6]। वह अपने पति को कर्मठ, कर्तव्यपरायण, जुझारू व सफल मानवरूप में देखने हेतु, लालायित थी, लेकिन होता ठीक उलट है।

आर्थिक दुरावस्था सकल परिवार को पंगु बना डालती है, तभी झल्लाकर महेन्द्रनाथ कहता है ''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ, क्योंकि अन्दर से मैं आराम तलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।''[7]

दाम्पत्य सम्बन्धों की दृष्टि से महेन्द्रनाथ एक नितान्त असफल मुखिया है, जिसे अहंवादी नारी ने कुचल–कुचलकर स्वाभिमान रहित कर दिया है। समग्रतः यह स्थापित है कि नाटकीय कथानक चाहे जिस रूप में ढ़ला हो, अन्ततः एक ही प्रभाव अमिट रहता है – दाम्पत्य सम्बन्धों में व्याप्त अलगाववादी भावना। सावित्री के जीवन में प्रविष्ट विविध पुरूष महेन्द्रनाथ के ही अनेक रूप जान पड़ते हैं।

नाटक का अन्त होते–होते पति–पत्नी के मध्य इस प्रकार विषाक्त वातावरण घर कर गया है कि महेन्द्र नाथ घर परिवार भगवान भरोसे त्यागकर अपने संकट के साथी जुनेजा के घर आश्रय लेता है, लेकिन जल्द ही अपने घर की राह लेता है। इसी प्रकार सावित्री भी अपने पुरूष मित्र जगमोहन के साथ जीवन बसर करने हेतु घर छोड़कर जाती तो है लेकिन तत्काल वापस आ जाती हैं। दोनों ही रोते, खिसियाते, चिड़चिड़ाते हुए उसी घोंसलेसम गष्ह में रहने हेतु मजबूर हैं। ओम शिवपुरी जी का वक्तव्य देखिए, ''यह आलेख एक स्तर पर स्त्री पुरूष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है।''[8]

सावित्री व महेन्द्रनाथ के मध्य कलह का मुख्य कारण कोई अदृश्य शक्ति है जो उनके ह्रदय व मस्तिष्क में जहर घोलती रहती है। इस दूषित हवा में सांस लेते हुए आखिर वे अच्छे कब तक रह सकते हैं? पुरूष चार सावित्री की इसी ढुलमुल प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए कहता हैं, ''असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में तो साल दो साल

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17SI01.10

बाद तुम यह महसूस करतीं कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है– कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। ''[9]

विवेच्य सम्बन्धों की इसी आधारशिला पर स्थापित बिन्नी व मनोज का बन्धन भी है, जो प्यार के रास्ते भले न गुजरा हो लेकिन अन्ततः वैवाहिक रूप अवश्य प्राप्त करता है। अपने घर के दमघोंटू वातावरण से त्रस्त बिन्नी मनोज का सहारा पाते ही किसी अनजान खुशी की चाह में घर छोड़कर निकल पड़ती है, लेकिन उस तथा कथित प्रेमी के साथ और भी घुटन व चिढ़ महसूस करती है। स्थिति इस हद तक बिगड़ जाती है कि हर कार्य पति की इच्छा के विपरीत कर उसका दिल दुःखाकर स्वयं की तसल्ली पाना चाहती है यथा पति अपनी पत्नी के लम्बे बालो की सराहना करता है तो वह इन्हें कटाना चाहती है, मनोज को बिन्नी का नौकरी करना पसन्द नहीं, तो वह कोई छोटी नौकरी ही करना चाहती है। झुझंलाहट में भरकर वह अपने मायके आने पर भी कहती है, ''मेरा अपना घर, हाँ और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार–बार मुझे हीन किया जाता है।''[10]

नाटक द्वारा यह स्थापित है कि अर्थ का अभाव मात्र दाम्पत्य सम्बन्धों को ही चकनाचूर नहीं करता अपितु पारिवारिक चूलों को भी जड़ से हिला देता है।

भाई–बहिन सम्बन्धों का परिवर्तित रूप

नाटक में महेन्द्रनाथ व सावित्री रूपी नायक–नायिका के तीन बच्चे हैं। लड़का अशोक व दो लड़कियाँ बिन्नी, किन्नी। प्राचीनकाल में पवित्रता की उपजाऊ भूमि पर खड़ा भाई–बहिन का पाक रिश्ता आज कलंक कालिमा में लिपटा है। बड़ा भाई अशोक अपनी बहिन बिन्नी के प्रेम में किंचित भी विश्वास न कर उसे घर छोड़ने का बहाना मात्र समझता है क्योंकि वह यदा–कदा अपने मायके आकर कटु वैवाहिक सम्बन्धों का रोना रोती रहती है। छोटी लड़की किन्नी मात्र तेरह वर्ष की अल्पायु में ही नर–नारी सम्बन्धों में गहरी रूचि रखती है तथा अपने बड़े भाई अशोक द्वारा जबरन घर में पकड़कर लाये जाने पर उसके वर्णा नामक उद्योग सेंटर की लड़की से सम्बन्धों को बड़ी बेशर्मी से उजागर कर देती है। वह अपनी सहेली सुरेखा के माँ–बाप के मध्य जो भी होता है उसकी गाथा भी चटखारे ले लेकर सुनती है।

घर के बच्चों में सबसे बड़ा होने के कारण अशोक अपनी शिक्षा मध्य में ही छोड़कर पत्र/पत्रिकाओं से अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटकर एक तरफ रखता हुआ मात्र उस स्वार्णिम अवसर की तलाश में है, जब वह भी घर छोड़ सके। अशोक सोने व गलत कार्यो में लिप्त रहने के अनन्तर अपनी माँ हेतु एक समस्या बना हुआ है।

छोटी लड़की, बड़ी लड़की को अशोक के विषय में बताती हुई उसका नाम 'शोकी' लेती है, जिस पर बिन्नी झल्ला उठती है। प्रत्युत्तरस्वरूप किन्नी उससे कहती है, ''तुम यहाँ थीं तो क्या कुछ कहा करती थीं उसके बारे में? तुम्हारा भी तो बड़ा भाई है, चाहे एक ही साल बड़ा है, है तो बड़ा ही।[11] बात आगे बढ़ाती हुई वह क्रोधावेग में कहती है कि अन्दर मेरे बाल खींच रहा था बाहर आकर अपनी फ्रेंचकट बता रहा है। किन्नी अशोक द्वारा अपनी चीजों को देने के सम्बन्ध में कहती है, ''वह जो इसकी–कभी मेरी बर्थडे प्रजेन्ट की चूड़ियाँ दे आता है उसे। कभी मेरा प्राइज का फाउन्टेन पेन। मैं अगर ममा से कह देती हूँ, तो अकेले मेरा गला दबाने लगता है।''[12] रिश्तों की ऐसी वीभत्स तस्वीर किसी काल में नहीं रही है। आजकल मूल्य तथा मर्यादा टूटकर तार–तार हो रहे हैं। सब सम्बन्धों की एक ऐसी नाजुक डोर से बँधे हैं जो कभी भी टूटकर गिर सकती है। बहन अपने भाई का नितान्त गिरा हुआ रूप प्रस्तुत करती है तथापि किसी के द्वारा उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

माता–पिता : सन्तान

अपनी जननी व जनक के प्रति प्रेम, अनुराग, त्याग, सेवा व समर्पण भाव होना ही चाहिए, जिसको महाकवि तुलसीदास जी अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में वर्णित भी करते हैं।

समय अधिक शक्तिशाली होता है तो काल की इन्हीं घड़ियों ने पुत्र को पिता की उल्टी मनोवृत्ति रखने वाले रूप में प्रस्तुत किया है। विवेच्य नाटक में अशोक अपनी माता सावित्री के प्रति या उससे मिलने आए गणमान्यों के प्रति घोर अरूचि से पेश आता है जबकि पिता के लिए उसके दिल में दया व सहानुभूति दोनों हैं। सावित्री द्वारा अपने काम की धौंस जमाने पर वह बड़ी बहन से पूछता है कि क्या वह यह सारा कार्य डैडी हेतु करती हैं, अगर हाँ तो उनकी शक्ल देखकर तो माँ को दया आनी चाहिए।

सावित्री द्वारा उसकी नौकरी हेतु परेशान होने पर वह कहता है कि उसकी माँ को अपने पुत्र हितार्थ नौकरी का प्रयास छोड़ देना चाहिए। वह आगे कहता है कि आज तक जब भी किसी को घर में बुलाया है, तो आदमी नहीं उसकी तनख्वाह हैसियत या रूतबे को बुलाया है, ''बुलाती क्यों हो, ऐसे आदमियों को जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे भी छोटे हो जाते हैं अपनी ही नजर में।''[13] अन्त में महेन्द्रनाथ घर छोड़कर चला जाता है, वापसी समय थोड़ा अन्धेरा है तो लड़का चिन्तित होकर कहता है, डैडी को स्कूटर रिक्शा से उतार लाना है। उनकी तबियत काफी खराब है।''[14] लड़का पिता के प्रति, तो लड़की माँ के प्रति वेदना से आप्लावित होते हुए कहती है कि जो उससे नहीं संभल सकता उसे सही करने वाला कोई नहीं है। वह बचपन से ही अपनी माँ को गृहस्थी के कार्यों में खटते देखती आ रही है। बड़ी लड़की माता–पिता दोनों के प्रति प्रेमपूर्ण भावों को संजोये है तभी तो उनके प्रस्थान पश्चात् चिन्तित भाव से उनके बारे में पूछती है, सैंडविच बनाती है तथा अपने बहन–भाई की बातें भी सुनती हैं। तात्पर्य यह है कि विवाह पश्चात् भी वह अपने मायके से मजबूती से जुड़ी हुई है।

नाटककार द्वारा छोटी लड़की विषयक विवरण उसकी आक्रामकता प्रदर्शित करने हेतु पर्याप्त है– ''छोटी लड़की, उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर, चाल हर चीज में विद्रोह फ्रॉक चुस्त पर एक मोजे में सुराख।''[15] वह छोटी है, उम्र में, अनुभव में, पढ़ाई, लिखाई में तो इसलिए चाहती है कि कोई उसके पास बैठे, उसकी बातें सुने, उसे सहारा दे लेकिन घर में सबकी निज की व्यस्तता के मध्य ऐसा होना सम्भव नहीं है। घर में व्याप्त असन्तुलित परिवेश के कारण उसे बाहर के लोगों से गलत बातें सुननी पड़ती है। वह चाहती है कि कोई बड़ा उसके साथ घटनास्थल पर चलकर सम्यक निर्णय दे, लेकिन सदस्यों में किसी के हृदय में इतनी दरियादिली नहीं, जो इस नाबालिग बच्ची की भावनाओं की रक्षा करते हुए उसका बचपन सुरक्षित रख सके। परिणामतः वह क्रोधित होती है, हाथ पैर पटककर चीजें फेंकती है, लड़ती हैं, अन्दर जाकर कमरे का दरवाजा बन्द कर लेती है किसी के समझाने का कोई असर नहीं। आधुनिक वैज्ञानिक युग में मशीनी गति से उन्नति करता मानव स्वयं भी मशीन बन बैठा है। माता–पिता अपनी सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व विहीन होते जा रहे हैं, तो बच्चे भी अपनी जननी व जनक को पूर्ण आत्मीयता से नहीं देख सके हैं। परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है, जो संस्कार बीजरूप में पड़ते हैं, वे ही भविष्य में पुष्पित व पल्लवित होते हैं। जिसने वाल्यावस्था में कुत्सित आचरणों की विचार श्रंष्खला देखी हो, उसका भविष्य कैसे सुधर सकता है? यही स्थिति विवेच्य नाटक में सभी बच्चों के साथ वर्णित है। अतः कुल मिलाकर बच्चों के गलत व्यवहार हेतु घर्षणित परिवेश ही उत्तरदायी है, स्वयं वे नही।

प्रेम, एक वष्हद् अध्ययन

आधे अधूरे में सावित्री–जगमोहन, सावित्री–महेन्द्रनाथ, बिन्नी–मनोज का प्रेम प्रत्यक्षतः तो अशोक व वर्णा का प्यार अप्रत्यक्षतः नाटकीय कलेवर में परिव्याप्त है। महेन्द्रनाथ सावित्री के प्रत्येक कार्य से असहमत व असन्तुष्ट दोनों है, तथापि जुनेजा उसे पत्नी–प्रेमी बताने में कसर नहीं छोड़ता। यही तो वह कहता है ''अपनी आज की हालत के लिए जिम्मेदार महेन्द्रनाथ खुद है। अगर ऐसा न होता तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझाऊँ।''[16] रही बात सावित्री की लड़की बिन्नी के प्रेम की, तो उसका मनोज के साथ सम्बन्ध प्रेम का कम, मजबूरी का अधिक है, तभी तो वह उसके नाम की डोर पकड़े घर से एक रात को गायब हो गई। जाकर ही पता चला कि वस्तुतः जिस नाम अर्थात् 'प्रेम' के नाम पर जाने वाली लड़की के पास इस अनुभूति के अतिरिक्त सबकुछ है। वह भी अपनी माँ की भाँति कई चीजें एक साथ पहनकर, ओढ़कर जीना चाहती है, लेकिन निराशा हाथ आती है।

जगमोहन तथा सावित्री के मध्य प्रेम सम्बन्धों पर दर्षष्टि डालने पर यह लगता है कि नायिका अपने गष्हक्लेश से मुक्त होने की चाह में अपने भूतपूर्व प्रेमी के साथ जाना चाहती है, लेकिन प्रथमतया सुविधाभोगी मनोवर्षत्ति वाला उसका प्रेमी बच्चों व नौकरी की मजबूरी जताकर सावित्री को उसके घर छोड़ जाता है। उसका सरासर झूठ उसकी वाणी से चीत्कार कर उठता है जब वह सावित्री से कहता है, ''तुम नहीं बदलीं बिल्कुल। उसी तरह डाँटती हो आज भी।''[17]

अशोक व वर्णा के सम्बन्धों का प्रत्यक्ष उल्लेख न मिलने पर भी हमें छोटी लड़की के वाक्यों पर विश्वास करना होगा, जब वह अपने भाई के वर्णा नामक युवती के साथ प्रेम सम्बन्धों की पोल खोलती है। बिन्नी किन्नी से पूछती है–

''किसकी बात कर रही है यहाँ।''

''झूठमूठ मेरा फाउन्टेन पेन तेरी वर्णा के पास नहीं है''

''वर्णा कौन''

''वही उद्योग सेन्टर वाली, जिसके पीछे जूतियाँ चटकाता फिरता है।''[18]

इस प्रकार प्रेमी–प्रेमिका अपने प्रेम–सम्बन्धों के विविध मानचित्रों के साथ नाटक में लक्षित होते हैं।

कार्यालयी भूमिः सम्बन्धों का जाल

मोहन राकेश जी ने विवेच्य नाटक में सामाजिक मानवीय सम्बन्धों के साथ कार्यालय सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार को भी रूपायित किया है यथा–सावित्री का बॉस सिंघानिया नैतिकता हनन का जीता जागता पुतला है। अपनी बच्ची के नाम का सहारा लेकर वह अनेक आंटियों को घर पर आमंत्रित करता है, जिनमें से सावित्री भी एक है। वह सावित्री से घिघियाए स्वर में कहता है ''तुम घर पर आओ किसी दिन बहुत दिनों से नहीं आयी। वह पूछती रहती है आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आई? बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से।''[19]

मित्रता : एक रूपांकन

सन्दर्भित नाटक में मित्रता नामक शब्द का भी विस्तृत रूप समझ आया है। एक लम्बे समय पूर्व में स्थापित मित्रता की यह अटूट बुनियाद महेन्द्रनाथ व जुनेजा को परस्पर पक्का करती आई है। महेन्द्रनाथ अपने मित्र को इतना चाहता है कि पारिवारिक कलह, क्लेश से आजाद होने हेतु वह अपने मित्र की शरण में चला जाता है। जुनेजा भी भूतकाल से ही महेन्द्रनाथ के ऊपर एक के बाद दूसरा अहसान करता आया है, तभी तो महेन्द्रनाथ सावित्री से कहता है कि पैसे भले न हों, लेकिन कम से कम जुनेजा को अपनी शक्ल तो दिखाते रहना चाहिए। जुनेजा भी सावित्री से कुछ ऐसे ही बोलता है, ''मैं दोस्त हूँ, उसका उसे भरोसा है मुझ पर।''[20]

दूसरी ओर सावित्री अपने कुटुम्ब की बर्बादी का पुरजोर उत्तरदायित्व जुनेजा पर ही थोपती है। इसका कारण दोनों मित्रों के मध्य साझा व्यापार था जिसमें जुनेजा तो बन गया लेकिन महेन्द्रनाथ बर्बाद हो गया। सावित्री को लगता है कि यह सब जुनेजा का ही किया धरा है, अन्यथा उसका पति तबाह न होकर करोड़ों का मालिक होता।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17SI01.10

पारिवारिक सम्बन्धों का समेकित स्वरूप

'आधे अूधरे' नाटक में एक मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से उद्‌भूत घुटन–टूटन, कुढ़न व जलन को भरपूर हवा दी गई है। एक परिवार के मुखिया को कैसी भूमिका अदा करनी चाहिए या महेन्द्रनाथ की वर्तमान स्थिति क्या है को उक्त वाक्यांश से समझा जा सकता है'', किसे सुना सकता हूँ, कौन है, जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए। वे सब रबड स्टैम्प के सिवा कुछ समझते ही नहीं मुझे।''[21] उसका मानना है कि अधिकार, सम्मान या प्रतिष्ठा उसके परिवार को दूसरे लोगों द्वारा ही प्राप्त हो सकती है क्योंकि वह स्वयं कुछ करने लायक नहीं है। प्रतिदिन के ऐसे दंगल पारिवारिक गाड़ी को हिलाकर उसे मरूभूमि बनाते जा रहे हैं।

द्वन्द्व निरूपण

नाटक में संघर्षों की भरमार है, तथापि इतना स्थापित है कि प्रत्येक घटना हेतु मात्र औरत को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, इसमें सबकी साझेदारी होती है। नाटकीय घटनाएँ उक्त तथ्य को दष्ढ़ता प्रदान करती है, भले ही हम इसे देर से समझें।

विशेष तथ्य यह है कि अपने सष्जन द्वारा सष्जनकार सामाजिक बदलाव के इच्छुक जान पड़ते हैं जो उनके प्रतिनिधि पात्र अशोक द्वारा कहलवायी गई है ''जो चीज वर्षों से एक जगह रूकी है, वह रूकी ही नहीं रहनी चाहिए। सचमुच चाहता हूँ कि बात किसी एक नतीजे पर पहुँच जाय।''[22]

नाटककार की व्यक्तिगत जिन्दगी, अनिश्चित स्वभाव व अंर्तद्वन्द्व नाटक द्वारा झाँक रहा है। महेन्द्रनाथ का हर 'शुक्र शनिचर' घर छोड़कर चला जाना उसके कृतिकार का स्वभाव है।

बिन्नी का स्व गष्हत्याग कर मनोज के साथ चुपचाप चले जाना, अनीता जी का, राकेश जी के साथ पलायन है। प्रस्तुत नाटक में मानवीय रिश्तों व बन्धनों को अति सूक्ष्मता से भले प्रस्तुत न किया गया हो, तथापि इसमें जीवन सत्य व यथार्थ को झुठलाया नहीं जा सकता।

विवादों का दौर

विश्व की हर वस्तु का श्वेत व श्याम रूप होता है अर्थात् लोग एक ही चीज में अच्छाई व बुराई तलाशने के अभ्यस्त हैं। यही स्थिति नाटक 'आधे अधूरे' की भी है जैसा कि नेमिचन्द्र जैन जी लिखते हैं, ''आधे अधूरे'' एक विवादास्पद नाटक है। विवाद का मुख्य मुद्‌दा नाट्य प्रयोग है। कुछ लोग इस प्रयोग को सार्थक, तो कुछ लोग चमत्कारिक मानते हैं। जहाँ तक कथा का सम्बन्ध है, कुछ लोगों की दृष्टि में वह समकालीन जीवन को यथार्थ स्तर पर उजागर करती है और कुछ लोगों की दृष्टि में उसमें जीवन की गहरी समस्याएँ नहीं ली गई हैं। ये दोनों मत आधे हैं और अधूरे भी। पर सत्य का अंश दोनों में है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह नाटक अपने नवीन नाट्य प्रयोग के कारण ही लोगों का ध्यान आकृष्ट कर सका है।''[23]

निष्कर्ष

सच है कि साहित्यकार अतुलित प्रतिभा का भंडार होते हैं, तभी तो जो सच्चाईयाँ आज एक लम्बे अरसे बाद हम समझ पाये हैं, राकेश जी काफी समय पूर्व ही इन्हें जान परख चुके थे। और तत्सम्बन्धी कषतित्व निर्माण भी कर पाये थे।

विवेच्य नाटक द्वारा स्पष्ट है कि जिस मन की चर्चा भारतवर्ष में प्रचलित दर्शन शास्त्र की पच्चज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, तंत्रात्माओं व महाभूतों के बाद स्थापित की गयी हैं, वह निश्चित रूप से अति दुरूह है। इसी मन ने बहुरूपिया भेष धरकर मानव को इतना छकाया कि वह परेशान हो उठा, किंकर्तव्यविमूढ दशा में वह चिल्ला भी उठा कि मनुष्य आधा भी है और अधूरा भी।

संदर्भ

1. आधे अधूरे : मोहन राकेश पृ0सं0–23 – राधाकष्ष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, चौथा संस्करण 2020
2. वही, पृ0सं0–117
3. मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक; नेमिचन्द्र जैन पृ0सं0–331, राजपाल एण्ड सन्स 2023 संस्करण
4. आधे अधूरे – राधाकष्ष्ण प्र0 प्रा0लि0 च0 संस्करण 2020, पृ0सं0–40
5. वही, पृ0सं0–35
6. वही, पृ0सं0–109
7. वही, पृ0सं0–58
8. मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक; नेमिचन्द्र जैन पृ0सं0–331, राजपाल एण्ड सन्ज 2023 संस्करण
9. वही, पृ0सं0–114
10. वही, पृ0सं0–48
11. वही, पृ0सं0–51
12. वही, पृ0सं0–84
13. वही, पृ0सं0–73
14. वही, पृ0सं0–119

15. वही, पृ0सं0–23
16. वही, पृ0सं0–103
17. वही, पृ0सं0–91
18. वही, पृ0सं0–84
19. वही, पृ0सं0–68
20. वही, पृ0सं0–108
21. वही, पृ0सं0–57
22. वही, पृ0सं0–80
23. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ0 बच्चन सिंह, पृ0सं0–466, राधाकष्ष्ण प्रकाशन संशोधित संस्करण 2008